International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 6; November 2017; Page No. 857-858

दलित कहानियों में चित्रित अस्मिता का संघर्ष

डॉ. शकुंतला
शास्त्री नगर, लाढ़ोत रोड़, रोहतक, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

भारत में आर्यों के आगमन के बाद आर्यों व अनार्यों में संघर्ष हुआ जिसमें अनार्यों को पराजय का सामना करना पड़ा। बाद में विजेताओं ने उसे अपनी सामूहिक सम्पत्ति स्वीकार कर उन पर अनेक प्रकार की आवश्यकताएँ लाद दी गई, ताकि वे उच्चवर्ग के लोगों की अनवरत सेवा करते रहें, अपने श्रम का यथेष्ठ भाग उनकी सुख–सुविधा के लिए देते रहें और उनके विरूद्ध किसी भी प्रकार का विरोध भी न करें। इसके लिए उन्होंने धीरे–धीरे उनके अधिकार छीन लिए और उनके साथ अस्पृश्यता का व्यवहार करने लगे। यहाँ तक की अन्य वर्णों कि सेवा में कोई बाधा न आये और ये परम्परा सदियों तक बनी रहे। इसके लिए अनेक धर्म, ग्रन्थों, उपनिषदों, पुराणों और मनुस्मृति की रचना की, ताकि ये मनुवादी व्यवस्था व परम्परा सुचारू रूप से बनी रहे।

आगे चलकर ब्रिटिश शासन काल में जैसे–जैसे औद्योगिकरण हुआ। वैसे–वैसे गाँव का दलित शहर की ओर भागने लगा। शहरों में जाति प्रथा कुछ कमजोर पड़ी नजर आई। उसी समय ब्रिटिश शासन ने अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए भारतीयों को शिक्षा, रेल यातायात तथा भारतीयों को सेना में भर्ती करने का महान् कार्य किया। साथ ही उस समय देश के अनेक समाज सुधारकों ने दलित उत्थान के लिए अनके क्रान्तिकारी आन्दोलन चलाए। दूसरी ओर महाराष्ट्र में ज्योतिबा फूले और डॉ० अम्बेडकर तथा केरल में नारायणा गुरू के माध्यम से दलितों का सामाजिक नेतृत्व उभरकर सामने आया। ईसाई मिशनरियों का धर्म परिवर्तन आन्दोलन भी दलितों में आत्मचेतना के लिए महत्वपूर्ण कड़ी साबित हुआ है।

डॉ० अम्बेडकर द्वारा निर्मित भारतीय संविधान के महत्वपूर्ण अनुच्छेद हैं जो दलितों को समानता व आत्मचेतन होने पर या सोचने पर जोर देते हैं। अनुच्छेद 15 में वर्णित है कि धर्म, वंश, लिंग और जाति व जन्म स्थान आदि के आधार पर किसी भी व्यक्ति के साथ किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद [(16)1] के अनुसार राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्तियों के सम्बन्ध में सब नागरिकों के लिए सम्मान अवसर व समानता की बात कही गई है। संविधान के अनुच्छेद [(16)4] में अनुसूचित जातियों–जनजातियों व अन्य जातियों की तुलना में विशेष आरक्षण देने का प्रावधान किया गया। साथ ही अनुच्छेद 46 के नीति–निर्देशक तत्वों वाले अध्याय में उक्त जातियों के शैक्षिक और आर्थिक हितों की उन्नति के लिए विशेष सावधानी बरतने तथा सामाजिक अन्याय और सब प्रकार के शोषण से मुक्ति दिलाने की बात कही गई है।

समकालीन हिन्दी–मराठी लेखक कहते हैं कि भारतीय संविधान में इन सब प्रावधानों के होने पर भी, क्यों दलित को सामाजिक स्तर पर आज भी नीच व अस्पृश समझा जाता है? क्यों उससे समानता के अवसर छीन लिए जाते हैं? क्यों आज भी धार्मिक एवं सार्वजनिक स्थलों पर प्रवेश निषेध है? क्यों उसे शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण अधिकार से दूर रखने की प्रवृति अपनाई जा रही है? इन्हीं प्रश्नों को लेकर आज दलित व्यक्ति आत्मचिंतन कर रहा है। अब भी वह आत्मानुभूति करने पर मजबूर है। समकालीन दलित लेखक ब्रह्मानन्द 'कलम की ताकत' कहानी में लिखते हैं कि आत्मचेतना पैदा होने पर दलित अब इन सामाजिक, सांस्कृतिक अनैतिक परम्पराएँ जो धर्म, वर्ण व जाति के आधार पर पग–पग पर शोषण करती हैं। इन्हें स्मरण करके उनके विरूद्ध ''मन ही मन निश्चय कर लिया है कि वह भी साहित्य सृजन करेगा ... गाँव के मंदिर में जाने पर ब्राह्मणों की गालियाँ, माँ–बाप का पल–पल अपमानित होना जैसी घटनाएँ उसके दिलो–दिमाग पर छाई हुई थी। लठैतों द्वारा अपने खेत पर दबंगों का कब्जा, उसे पल–पल सालता रहता था। बचपन में स्कूल में घटने वाली घटनाओं को याद करके उसके रोंगटे खड़े हो गए कि किस प्रकार मास्टर दीनानाथ उपाध्याय उसे सबसे पीछे की सीट पर बिठाया करते थे। कक्षा में सबसे तेज होने के बाद सबसे कम अंक उसी के आते थे। इतना ही नहीं उसे पानी पीने के लिए भी तेज धूप में पैदल तालाब तक जाना पड़ता था, जहाँ गाँव भर के पशु पानी पीते थे।''[1] लेखक कहता है कि इस प्रकार की अनेक यातनाओं व पीड़ा पर आत्मचिंतन कर दलित व्यक्ति इन सभी का कारण ब्राह्मणवादी संस्कृति को मानते हैं। जो व्यक्ति–व्यक्ति को धर्म, सम्प्रदाय, वर्ण, जाति के आधार पर अन्तर पैदा कर असमानता की बात करती हैं। आजादी के इतने वर्षों बाद भी धर्म व परम्परा के नाम पर उसे छला जा रहा है।

मराठी दलित लेखक 'बाबूराव बागुल ''जब मैंने जात छुपाई' कहानी में कहता है कि ''इस अभाग्य देश में आदमी को दलित जाति में जन्म नहीं लेना चाहिए, इतना दुख, इतना अपमान सहना पड़ता है कि मर जाना बेहतर लगता है, जहर प्यार हो जाता है।''[2] 'शरण कुमार लिम्बाले' की 'समाधि' कहानी में यही झलक मिलती है, ''यहाँ का भगवान भी मनुष्य द्रोही है। वह सवर्णों को एक पलड़े में रखता है तो शूद्रों को दूसरे पलड़े में तोलता है। सारे हक–अधिकार वह सवर्णों को ही दे देता है। यह समाज धर्म के नियमों से जकड़ा हुआ है। धर्म ग्रन्थों के पन्ने–पन्ने पर शूद्रों का अपमान और उन्हें यातना देने के आदेश मिलते हैं। सोचता हूँ, इन धर्म ग्रन्थों के पन्नों पर टट्टी कर देनी चाहिए। मूत से इन मन्त्रों को भिगो देना चाहिए। इन्हीं मंत्रों ने हमारी आदमीयत को नकारा है।[3] दूसरी ओर मराठी दलित लेखक 'बाबूराव बागुल' 'विद्रोही' कहानी में लिखते हैं कि अब दलित व्यक्ति शिक्षा के कारण बुद्ध, कबीर, फूले व डॉ० अम्बेडकर के वैचारिक आन्दोलनों से प्रभावित होकर, आत्मचिंतन कर अपनी दुदर्शा के लिए ब्राह्मणवादी व्यवस्था को मुख्य कारण मानता है। जो दलित को पशुता से बदत्तर जीवन जीने को मजबूर करती है। ''कैसा धर्म ...? जिसने मनुष्य को मार डाला, जानवर समझा, उस धर्म ने? आदमी की जगह पत्थर को महत्व देने वाले देश ने? उनका कहा सुनने को मैं तैयार नहीं हूँ,

इन दोनों ने ही गरीबी व दुःख दिए हैं, इसलिए इन्हें ही धक्के मारकर दूर कर देना चाहिए?[4] लेखक इस बात पर भी हमारा ध्यान दिलाता है कि दलित के साथ छलपूर्ण व्यवहार केवल हिन्दू ने ही नहीं किया, क्रिश्चयन और मुसलमान ने उससे वैसा ही अभद्र व्यवहार किया, जो मानवता को बार–बार शर्मसार कर रहा है।

''वो बड़ा साहब भले क्रिश्चयन हैं और वह दूसरा मुसलमान, पर वे मुझे भंगी ही समझेंगे ... पिता जी स्कूल में भी सभी मुझे विधार्थी न कह भंगी कहते हैं, इस तरह कदम–कदम पर छलने वाला देश कहीं नहीं : कितना सहन करूँ? कितना निगलूँ? यह देश है या बंदीशाला? कैदखाना ... और कोई गुनाह न करने के बावजूद मैं गुनाहगार की तरह अपमानजनक यातनामय में जीवन क्यों जी रहा हूँ, नरक यातना क्यों भुगत रहा हूँ? क्यों ... क्यों ... क्यों?''[5] इस प्रकार की प्रश्नात्मक शैली दलित आत्मचेतना का परिचय देती है जो समाज से हजारों साल की यातनाओं के बारे में प्रश्न करते हैं और पूछना चाहते हैं कि क्यों उसे इतनी सजा दी गई? क्यों उसे जानवर से भी बदतर जीवन यापन करना पड़ा? क्यों उस पर धार्मिक व सांस्कृतिक पाबंदियाँ लगाई गई? क्यों उससे मनुष्यता का व्यवहार नहीं किया?

दलित लेखक कहते हैं कि अब दलित अपनी वैचारिकी और आत्मचेतना के बल पर ऐसे भारतीय समाज की कल्पना करते हैं, जैसे कि भक्तिकाल में संत रविदास ने की थी। ''ऐसा चाहूँ राज में जहां मिले सबन को अन्न छोट–बड़ों सब सम बसें रविदास रहे प्रसन्न।''[6] अर्थात् रविदास जी एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जहाँ धर्म, सम्प्रदाय, जाति के आधार पर कोई भेदभाव न हो। सभी को सम्मान पूर्वक जीने का और सम्मानपूर्वक रहने का अधिकार मिले। आगे रविदास जी कहते हैं कि ''संत संगति मिली रहीए याधड, जैसे मधुप मखीरा।''[7] अर्थात् हमारा सामाजिक संगठन ऐसा पवित्र और संगठित होना चाहिए जैसे शहद की मक्खियाँ हमेशा मिलजुल कर रहती हैं। सब मिलकर काम करती है और शहद इक्कठा कर समाज में मिठास बांटती है। इस तरह आपस में उच्च–नीच का कोई झगड़ा पैदा नहीं होता है। बल्कि समाज विरोधी या मानव विरोधी ताकतों का मुकाबला करने के लिए संगठित होना अति आवश्यक है। डॉ० अम्बेडकर का भी यही कहना था कि संगठन बनाओ और ब्राह्मणवादी व्यक्तियों ने दलितों को अनेक जातियों, उपजातियों में बाँट कर वर्षों तक शोषण व अत्याचार किया है। इसी कारण दलित महापुरूषों ने बार–बार दलितों को संगठित होने के लिए उनकी आत्मचेतना को जगाया है।

सन्दर्भ

1. सं० रमणिका गुप्ता, युद्धरत आम आदमी पत्रिका जनवरी–मार्च 2012, पृ० 27–28
2. बाबूराव बागुल, जब मैंने जात छुपाई कहानी संग्रह, पृ० 107
3. शरण कुमार लिम्बाले, छुआछूत कहानी संग्रह, पृ० 29
4. सं० रमणिका गुप्ता, युद्धरत आम आदमी पत्रिका (विशेषांक 2009), पृ० 22
5. वही, पृ० 22
6. सन्त प्रेम दास जस्सल, सतगुरू रविदास, पृ० 19
7. वही, पृ० 21